* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।

श्रीमद्भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक । भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर । किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १४ | गौराब्द ४८३, मास–विष्णु १०, वार–अनिरुद्ध | संख्या १०

शुक्रवार, ३० फाल्गुन, सम्वत् २०२५, १४ मार्च १९६९

श्रीकृष्णस्य महानन्दाख्यस्तोत्रम्

(श्रीश्रीलरूप गोस्वामिना विरचितम्)

श्रीकृष्णः परमानन्दो गोविन्दो नन्दनन्दनः ।
तमालश्यामलरुचिः शिखण्डकृतशेखरः ॥१॥

श्रीकृष्ण, परमानन्द (जो परम आनन्दस्वरूप हैं), गोविन्द, नन्दनन्दन, तमालश्यामल-रुचि (तमाल वृक्ष की तरह जिनकी स्निग्ध कान्ति है), शिखण्डकृतशेखर (मोरपंखके द्वारा जिनका मस्तक सुशोभित है) ॥१॥

पीतकौशेयवसनो मधुरस्मितशोभितः ।
कन्दर्पकोटिलावण्यो वृन्दारण्यमहोत्सवः ॥२॥

पीतकौशेयवसन (जो पीले रंगके पट्टवस्त्र द्वारा सुशोभित हैं), मधुरस्मितशोभित (जो मधुर ईषद्धास्ययुक्त हैं), कन्दर्पकोटिलावण्य (कोटि कामदेवके समान जिनका रूप है), वृन्दारण्यमहोत्सव (जो वृन्दावनके महोत्सव-स्वरूप हैं) ॥२॥

वैजयन्तीस्फुरद्वक्षाः कक्षात्तलगुडोत्तमः ।
कुञ्जार्पितरतिर्गुञ्जापुञ्जमञ्जुलकण्ठकः ॥३॥

वैजयन्ती स्फुरत्वक्षाः (जिनका वक्षस्थल वैजयन्ती अर्थात् पंच वर्णके पुष्पमाला द्वारा सुशोभित है), कक्षात्तलगुडोत्तमः (जो पशुपालन करनेके लिए बाहु परिणामयुक्त उत्तम लाठी अपने बगलमें धारण किये हुए हैं), कुञ्जार्पित रति (जो लतावेष्टित वनके मध्यस्थानमें रहना पसन्द करते हैं), गुञ्जापुञ्जमञ्जुलकण्ठकः (गुञ्जामालाके द्वारा जिनका मनोहर कण्ठप्रदेश सुशोभित है) ॥३॥

कर्णिकाराढ्यकर्णश्रीर्धृतिस्वर्णाभवर्णकः ।
मुरलीवादनपटुर्वल्लवीकुलवल्लभः ॥४॥

कर्णिकाराढ्यश्रीः (कनेरके फूलोंके द्वारा जिनके दोनों कान सुशोभित हैं), धृतस्वर्णाभवर्णकः (जो स्वर्ण वर्णके अनुलेपन द्वारा अनुलिप्त हैं), मुरलीवादनपटु (जो मुरली बजानेमें अत्यन्त निपुण हैं), वल्लवीकुलवल्लभः (जो व्रजरमणियोंके अत्यन्त प्रियतम हैं) ॥४॥

गान्धर्वाप्तिमहापर्वा राधाराधनपेशलः ।
इति श्रीकृष्णचन्द्रस्य नाम विंशतिसंज्ञितम् ॥५॥
आनन्दाख्यं महास्तोत्रं यः पठेच्छृणुयाच्चयः ।
स परं सौख्यमासाद्य कृष्णप्रेमसमन्वितः ॥६॥
सर्वलोकप्रियो भूत्वा सद्गुणावलिभूषितः ।
व्रजराजकुमारस्य सन्निकर्षमवाप्नुयात् ॥७॥

गान्धर्वाप्तिमहापर्वा (जो श्रीराधिकाजीकी प्राप्तिको महान् उत्सव समझते हैं), राधाराधनपेशलः (जो स्वाधीनभर्तृका श्रीमती राधिकाजीकी वेश-भूषा करनेमें अत्यन्त कुशल हैं)। श्रीकृष्णके बीस नामोंसे युक्त आनन्दाख्य इस महास्तोत्रका जो व्यक्ति पाठ करते हैं या श्रवण करते हैं, वे कृष्णप्रेम से परम प्रेमपूर्ण होकर परम सुखको प्राप्त करते हैं और समस्त सद्गुणों द्वारा भूषित होकर सभी व्यक्तियोंके प्रिय बनकर अन्तमें श्रीव्रजराजकुमार श्रीकृष्णके निकट पहुँचकर वहाँ अवस्थान करते हैं ॥५–७॥

॥ इति श्रीमहानन्दाख्य स्तोत्रं समाप्तम् ॥

भारत और परमार्थ

अप्राकृत जगद्गुरु श्री श्रीचैतन्य महाप्रभु ने जिस "भारत" शब्दका प्रयोग किया है, अज्ञ व्यक्ति उस शब्दका देशगत संकुचित अर्थ करते हैं। स्थिति और भङ्गके कारण जिस 'मनुष्यजन्म' शब्दका प्रयोग किया गया है, उसका भी अज्ञ व्यक्ति पात्रगत संकुचित अर्थ करते हैं। बीते हुए कालकी अपेक्षा रखनेवाले धर्ममें भविष्य कालके कथन द्वारा अज्ञरूढ़ि वृत्तिका प्रकाश होता है; यह प्रापञ्चिक बद्धजीवों के लिए होता है। किन्तु नित्य जगतमें केवल चेतनमय परव्योम या वैकुण्ठ में अखण्डकाल वर्त्तमान है, जिसका अप्राकृत शब्दके विद्वद्रूढ़ि वृत्तिके द्वारा संकेत किया गया है।

कुछ व्यक्ति आभिधानिक इन्द्रियज ज्ञानोपयोगी शब्दार्थ तात्पर्यसे ही सन्तुष्ट हैं; उसमें विश्वास रखते हुए वे तुरीय जगतके शब्दकी विद्वद्-रूढ़ि वृत्ति द्वारा प्रकाशित अर्थमें श्रद्धा नहीं रखते। अतएव वे लोग देश-काल-पात्र सीमायुक्त इस जड़-जगतका दर्शन करते हुए जन्म-जन्मान्तर तक इसीमें आबद्ध रहते हैं और भगवान् की नित्य लीलामें प्रवेश करनेमें असमर्थ हो पड़ते हैं। कर्मभूमि भारत की आनुष्ठानिक क्रियाएँ काल द्वारा विकृत होने योग्य होनेके कारण ये सभी नश्वर धर्मके अन्तर्गत हैं। जब तक बद्धजीवोंमें लीलाभूमिकाको कर्म भूमिका समझनेका विवर्त्त (एक वस्तु में दूसरे वस्तुका भ्रम) प्रबल रहें, तब तक वे खण्डकाल या सीमाबद्ध कालके अधीन रहते हैं। किन्तु जब लीलामय परतत्त्व भगवान् श्रीकृष्ण अपने वंशी-निनादसे जीव विशेषका आकर्षक कर उसे परव्योमके लीलाकार्य में कुशलता प्रदान करते हैं, तब उस जीव विशेषमें देशकालपात्रगत दोषदर्शन करनेकी प्रवृत्ति नहीं होती। माया-वशीभूत जीव वकुण्ठाकर्षणके अयोग्य होनेके कारण वे इन्द्रियजनित ज्ञानके द्वारा ऐतिहासिक पात्रके कालाधीन जन्म मरणादि स्वीकार कर प्रपञ्चमें प्रकटित लीलाप्रकाशका दर्शन करनेमें असमर्थ हो पड़ते हैं और अपनेको इस कर्मजगतके एक कर्मवीर विशेष समझने लगते हैं।

इन सभी व्यक्तियोंका केवल अर्थ शास्त्रमें ही अधिकार है। उन व्यक्तियोंके चिदिन्द्रियों का उन्मेषण न होनेके कारण वे लोग बद्धावस्थाको ही पसन्द करते हैं। अतएव परमार्थ की दृष्टिसे वेदादि शास्त्रोंमें उन लोगोंके लिए वैधी भक्तिकी आवश्यकता बतलाई गई है। अप्राकृत नाम, अप्राकृत रूप, अप्राकृत गुण, अप्राकृत परिकर समूह और अप्राकृत

लीलाओंको जो व्यक्ति प्रापञ्चिक जगतके क्रिया कलाप की तरह भेद-दर्शन द्वारा दर्शन करनेके लिए व्यस्त हैं, वे अपनी भाग्यहीनता का ही परिचय प्रदान करते हैं। इस भूताकाशमें प्रचलित शब्दसमूह अज्ञविचाराधीन भोक्ताभिमानी व्यक्तियोंके निकट विभिन्न भोग्य वस्तुओंके रूपमें उपस्थित होते हैं और रूप-रस-गन्ध-स्पर्शात्मक अस्त्रों द्वारा ऐसे व्यक्तियों के ऊपर आक्रमण करते हैं। उस समय बद्ध जीवमें अत्यन्त आर्त्ति उपस्थित होती है और वह अपना दुर्भाग्य समझ पाता है; वह माया रचित राज्यसे विश्राम पानेके लिए बारम्बार भगवानसे निष्कपट प्रार्थना करता है। उसी समय वह लीलानुभूति का अधिकारी बनता है।

उस समय जीव अप्राकृत सामग्रियोंकी सहायतासे अपने नित्य पूर्णज्ञानमय, नित्यानन्दमय स्वरूपानुभूतिके द्वारा क्रमशः प्रपञ्चातीत 'अप्राकृत' शब्दगत वैचित्र्यादिका दर्शन करने लगता है। इसलिए क्रमपद्धतिके विचारसे साधन करते करते क्रमशः नाम, रूप, गुण, परिकरवैशिष्ट्य और सबसे अन्तमें लीलादिकी स्फूर्त्ति होने लगती है। इसी क्रमसे जीव भी अपना श्रवणाधिकार प्राप्त करता है।

शब्दके अज्ञविचारगत तात्पर्यके द्वारा चालित होकर यदि जीव नाम-महिमासूचक, भगवानके निश्वासस्वरूप वेदमंत्रोंके द्वारा भगवानकी पूजा न करें और बहिर्मुख चेष्टाओंमें ही लगे रहें अथवा निवृत्तिपरा काल्पनिक चेष्टा करते रहें, तो कदापि ऐसी क्रियाओं द्वारा वह लीला-वैशिष्ट्यकी उपलब्धि नहीं कर सकता।

भारत में कर्मवादके साथ लीला-वैशिष्ट्य-कीर्त्तन की महिमा सामगानमें प्रचुर रूपसे वर्णन की गयी है। जहाँ जीव अपनी अज्ञताका अत्यन्त आदर करते हुए भोग-पिपासा द्वारा लिप्त हो, वहाँ वह अपनी क्षुद्र स्वार्थपरायणता के वशीभूत हो पड़ता है। उस समय उसका स्वरूप-विभ्रम उपस्थित होता है और वह काल्पनिक अहंग्रहोपासना, एवं श्रुतिद्रोही, गुरुद्रोही, प्रच्छन्नबौद्ध, धैर्यरहित मायावादियोंकी चेष्टाओंको ही 'परमार्थ' समझने लगता है। इस श्रेणीके व्यक्तियोंके निकट हमारी जिज्ञासा होनेके कारण उनके बोधगम्य अनुकूल भाषाकी सहायतासे उनके प्रतिकूल प्रयासका वर्जन करते हुए हम लोग सत्यकी आलोचना करनेमें प्रवृत्त हो रहे हैं।

अज्ञरूढ़िवृत्ति अर्थात् ईश-विमुख-शब्दवृत्ति का अवलम्बन कर विचार करने पर प्रापंचिक देशगत पार्थक्य द्वारा निर्णीत "भारत" भारतेतर प्रदेशोंसे भिन्न है। "भारत" आदि प्रदेशसमूह मुख्यदेश को लक्षित करते हैं। इस प्रापञ्चिक भारत में लीलागत परोपकार धर्मका बारम्बार अवतरण होता रहता है।

प्रापञ्चिक विचार द्वारा 'उपदेश' शब्दका जो अर्थ ग्रहण किया जाता है, वह अर्थ लीलागत विचारमें भी देखा जाता है। तथापि इस हेय जागतिक भूमिका के क्रिया-कलापादि प्रपञ्चान्तर्गत क्रियाएँ मात्र हैं। ऐसी प्रापञ्चिक हेयता नित्यलीलामें नहीं होनेके कारण भौमलीलाके वर्णनमें प्रदर्शित अभिमन्यु, कंस, अघ-बक-पूतनादि की स्थिति परव्योम या श्रीकृष्ण धाममें नहीं है। वहाँ वे सभी अव्यक्त रूपसे वर्त्तमान हैं। नित्यलीलाके ये अंश 'प्रतिकूल-चेष्टा' कहलाते हैं और नित्यलीलाके इस भौम जगतमें अवतीर्ण होने पर मूर्तिमान रूप धारण करते हैं। प्रापञ्चिक क्रियाकी सीमा है, किन्तु लीला असीम है। प्रापञ्चिक क्रिया नश्वर और काल द्वारा परिवर्तनयोग्य है, किन्तु लीला अखण्ड वर्त्तमान कालमें नित्य क्रियावती है। जब तक दर्शनकारी व्यक्तिमें भोगमयी दृष्टि द्वारा प्रपञ्चमें अवतीर्ण लीला का दर्शन करनेकी अयथा चेष्टा वर्त्तमान रहें, तब तक नित्यलीला उसके नयनगोचर नहीं होती। कुछ पण्डिताभिमानी व्यक्ति अपनी अज्ञताके कारण नित्यलीलाको अनित्य समझकर भ्रममें पड़ जाते हैं। यह उनकी सत्य विस्मृतिका फलमात्र है। अधिरोहवादकी सहायतासे इस अनित्य जागतिक भूमिकासे नित्य भूमिकामें प्रवेश करनेकी चेष्टा करने पर ऐसा भ्रम उपस्थित होता है और परमार्थ-अनुशीलनका द्वार बन्द हो जाता है। जंजीरों द्वारा बन्द द्वारके भीतरमें आबद्ध व्यक्तियोंकी चेष्टा मिथ्या या कल्पना है। मायावादी या मिथ्यावादी सम्प्रदायके व्यक्ति नित्यसत्यकी उपलब्धि रहित हैं। अतएव वे लोग झूठमूठसे बड़े बनकर भक्तोंके आसन पर अधिकार जमानेकी चेष्टा करते हैं। किन्तु उनका अर्थ-शास्त्र या विचार पारमार्थिक अनुशीलनके लिए सम्पूर्ण अयोग्य है। अतएव उनका प्रयास निष्फल हो पड़ता है और वे नित्यलीला प्रवेशसे वञ्चित रह जाते हैं। नामापराध करते करते रूपश्रवण के द्वारा रूपापराध, और लीलाश्रवणके द्वारा लीलापराध हो पड़ता है। इस प्रकार वे लोग नरकपथगामी हो पड़ते हैं।

भारतवर्ष स्मरणातीत कालसे ही धर्मभूमि, कर्मभूमि और सभ्यतासम्पन्न व्यक्तियोंका निवासस्थान रहा है। दूसरे-दूसरे देशवासियोंने भारतवासियोंसे बहुत कुछ सभ्यता, आत्म-मर्यादा, विद्या-शिक्षा, नीति-शिक्षा आदि प्राप्त की है। इसलिए भारतवर्षके कर्मभूमि, धर्म-भूमि, पुण्यभूमि आदि नाम हैं। इन्हीं लक्षणों द्वारा दूसरे-दूसरे देश भी कहलाने योग्य हैं। मुख्यरूपसे भारतवर्ष को दर्शन करने पर सभी देशोंके सभ्य निवासी भारतवासियोंकी कर्म-चतुरता, धर्मनिपुणता और नीति-निपुणता प्राप्त कर सकते हैं।

भारतवर्षमें परमार्थकी जो धारा देखी जाती है, कहीं कहीं उसीका आंशिक प्रतिफलन

और कहीं उसीका विकृत प्रतिफलन देखा जाता है। अधिकांश स्थानोंमें वह अर्थशास्त्रके अन्तर्भुक्त करने योग्य है। मानव जीवन की सफलता पारमार्थिकतामें ही वर्त्तमान है। पारमार्थिक व्यक्तियोंके सौभाग्यकी तुलनामें विषय दावानलपीडित इन्द्रियतर्पणपरायण व्यक्तियोंकी मर्यादा सब प्रकारसे तुच्छ है।

श्री श्रीचैतन्य महाप्रभुने पारमार्थिक राज्यमें अग्रसर होनेके लिए ही साधारण भाषामें 'उपकार' शब्द द्वारा अपनी वाणीकी पुष्टि की है। जब मानव-समाजके व्यक्ति मानव सभ्यताकी अति उन्नत अवस्थामें पहुँचते हैं, तब ही पारमार्थिकताके साथ अर्थशास्त्रके विषयका पार्थक्य उपलब्धि करते हैं। विद्या की उन्नततम अवस्था,नीतिकी परमोन्नत सीमा और सभ्यताका परम आदर्श एकमात्र पारमार्थित जीवनमें ही देखे जाते हैं। जीव पारमार्थिक जीवनके अभावमें अर्थशास्त्रके अधोगामी स्रोतमें पतित होकर विपरीत बुद्धि के वशीभूत होकर क्षणभंगुर जीवनकी इन्द्रियपरायणता को ही नित्य समझने लगता है। जब जीव परमार्थ-भूमिकासे पतित होकर मनोभूमिकाके राज्यमें प्रवेश करता है, तब वह पञ्च तन्मात्राओंके विषयोंमें अपनी इन्द्रियोंको नियोग करता है। उस समय वह परम प्रयोजनरूप परमार्थसे विच्युत होकर तात्कालिक प्रयोजनके रूपमें दिखलाई देनेवाले विषयोंके प्रति दौड़ पड़ता है। उसके गमन पथमें नाना प्रकारके स्थूल विचार आकर जड़ भोगकी पिपासाको बढ़ाते रहते हैं। तब जीव आत्मविस्मृत होकर अनात्मप्रतीतिको ही सत्य समझने लगता है। आत्मदर्शन के अभावमें भोगप्रवृत्ति काम-क्रोधादिके रूपमें अपना स्वरूप करने लगती है।

ऐसे अप्रीतिकर और असुविधाप्रदायक कार्यमें नियुक्त होनेके बदले प्रीतिराज्यके अनुसन्धान करनेमें ही परोपकारी व्यक्ति लगा रहता है। ये सभी बातें भारतके उन्नत विचारसम्पन्न मनुष्य समाजमें अनन्तकालसे ही प्रचलित हैं। दूसरे दूसरे देशवासियोंने ऐसे उन्नत विचारपरायण व्यक्तियोंका आदर्श ग्रहण कर अपने स्वभावको थोड़ा बहुत उन्नत किया है। कुछ पात्रविशेषोंमें इन सभी उन्नत विचारोंका अधिक आदर न होनेके कारण तात्कालिक सुखदायक परिणामरूप विषमय फलोंकी उत्पत्ति हुई है। इसके द्वारा मनोधर्म की ही वृद्धि हुई है। इस स्थूल जगतमें प्रायः सर्वत्र ही हिंसाप्रवृत्तिकी प्रबलता देखी जाती है। (क्रमशः)

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(वैधी भक्ति)

१—विधिमार्ग किसे कहते हैं ?

"बद्धजीवोंके आत्माका नित्यधर्म रूप राग निद्रितप्राय होता है अथवा विकृतरूपसे विषयराग रूपसे परिणत हुआ है । वैध-विधानका मूल तात्पर्य यही है कि इस निद्रित प्राय रागको जागरित करना या विकृतराग को यथार्थ स्थानमें लगाकर जीवकी स्वाभाविक शुद्ध चिन्मय अवस्थाका उन्मेषण कराना । इसके लिए शास्त्रोंमें साधु-वैष्णवोंने जो सभी विधियाँ दिखलाई हैं, वे सभी विधि-मार्ग के अन्तगत हैं ।" —कृ० स० ८।१०

२—वैधी और रागात्मिका भक्तिमें कौन-कौन सी वृत्तियाँ क्रियावती है ?

"संभ्रम, भय और श्रद्धा—ये तीनों वृत्तियाँ वैधी भक्तिमें कार्य करती हैं । कृष्ण लीलाके प्रति लोभ ही रागात्मिका या रागानुगा भक्ति में कार्य करता है ।" —जै० ध० २१वाँ अ०

३—रागोदय होने के पहले जीवका क्या कर्तव्य है ?

"जब तक रागका उदय न हो, तब तक विधिका पालन करना ही मनुष्योंका प्रधान कर्तव्य है ।" —चै० शि० १।१

४—स्मार्त्त धर्म और साधन भक्तिमें क्या प्रभेद है ?

"आर्थिक या स्वार्थतायुक्त धर्मका दूसरा नाम नैतिक या स्मार्त्त धर्म है । पारमार्थिक वैध-धर्मका नाम साधन-भक्ति है ।"

—चै० शि० ३।१

५—मायाबद्ध जीवके लिए परम कल्याण क्या है ?

"मायामुग्धजीवानां मायाभोग एवं प्रेयस्ततो दुर्निवारः संसारः । मायावितृष्णायपूर्विका श्रीकृष्णसेवा तु तेषां श्रेयः ।" अर्थात् "माया-मुग्ध जीवके लिए माया-भोग ही प्रेयः है जिसके द्वारा संसार-चक्र अनिवार्य है; माया-वितृष्णाको दूर करनेवाली श्रीकृष्णसेवा ही उनके लिए परम कल्याण या परम श्रेयः है ।" —श्रीशि० स० भा० १

६—जब तक मायिक शरीर रहें, तब तक जीवोंका क्या कर्तव्य है ?

"जब तक मायिक शरीर रहें, तब तक सावधानीके साथ भक्तितत्वकी स्थिर रूपसे आलोचना करनी चाहिए । सर्वदा भक्तसेवा, कृष्णनाम और युगलभजन करना चाहिए तथा विषयों के प्रति शिथिलता अपनाना

आवश्यक है । धाम-कृपा, नाम-कृपा, भक्त-कृपा आदिके बलपर असाधु-संग से सर्वदा कुशलतापूर्वक दूर रहना चाहिए । ऐसा करने पर शीघ्र ही नित्य लीलामें प्रवेश होगा और शुद्ध श्रीयुगलसेवाकी प्राप्ति होगी ।"

—न० भा० त० १०७।१०८

७—कर्मयोग, ज्ञानयोग, गौणभक्ति और साक्षात् भक्तिमें परस्पर क्या पार्थक्य है ?

"कर्म जब अपनी भोग पिपासाकी तृप्ति के लिए की जाय, तब उसे 'कर्म-काण्ड' कहा जा सकता है । इन कर्मसमूहों द्वारा ज्ञान प्राप्त करनेकी चेष्टा वर्तमान रहने पर इन्हें 'कर्म-योग' या 'ज्ञानयोग' कहा जा सकता है । यदि इन सभी कर्मोंको भक्तिसाधनके अनुकूल बनाया जाय, तो ये सभी कर्म 'गौणभक्तियोग' के अन्तर्गत हैं । परन्तु शुद्ध उपासना-लक्षण-युक्त कर्मको केवल 'साक्षात् भक्ति' ही कहा जा सकता है ।" —ब्र० सं० ५।६१

८—सुकृति कितने प्रकारकी है ? किस प्रकारसे भक्त्युन्मुखी सुकृतिका उदय होता है ?

"सुकृति तीन प्रकार की है—कर्मोन्मुखी, ज्ञानोन्मुखी और भक्त्युन्मुखी । पहले दो प्रकार की सुकृतियोंद्वारा कर्मफलभोग और मुक्तिकी प्राप्ति होती है । आखिरी प्रकारकी सुकृतिके द्वारा अनन्य भक्तिके प्रति श्रद्धा उदित होती है । यदि अज्ञानसे शुद्धभक्त्यङ्ग का पालन हो जाय, तो वही सुकृति है ।"

—'नाम-माहात्म्य-सूचना' ह० चि०

९—यथार्थ-भजन और भजनप्राय: प्रयास का क्या स्वरूप है ?

"यथार्थ-भजन अन्याभिलाषिताशून्य और ज्ञानकर्मादि द्वारा अनावृत है तथा अनुकूलता के साथ कृष्णानुशीलनयुक्त है । किन्तु भजन-प्राय: अवस्था या वैष्णवप्राय: छायानामाभासी व्यक्तियोंकी भजन-चेष्टा तीव्र साधन मात्र है । वे नाना कामनाओंकी पूर्तिके लिए भजन करते हैं, तब भी उनकी भक्तिकी ही सिद्धि होती है । कामनाके लिए भजन करने पर भी कृष्ण प्रेमकी अन्तमें प्राप्ति होती है । दूसरे-दूसरे कामनायुक्त व्यक्ति यदि कृष्णभजन करें, तो कृष्ण नहीं माँगने पर भी उन्हें अपना चरणामृत प्रदान कर कृतार्थ कर देते हैं ।"

—'संशय-निवृत्ति' स० तो० ४।१२

१०—गृहस्थों का कैसे उपस्थवेग धारण होता है ?

"वैध-स्त्रीसङ्ग द्वारा गृहस्थ लोग उपस्थ-वेग धारण करने में समर्थ होते हैं ।"

—'धैर्य' स० तो० ११।५

११—अवैष्णव या विद्ध-वैष्णवों के हाथों द्वारा पकाया हुआ अन्न क्या कृष्णको निवेदन किया जा सकता है ?

"शुद्ध वैष्णवों के हाथों द्वारा पकाया हुआ अन्न ही कृष्णको निवेदन किया जा सकता है। कृष्णपूजाके समय वहाँ किसी अवैष्णव का उपस्थित रहना अनुचित है। उनके पकाए हुए अन्नको कृष्ण ग्रहण नहीं करते।" —'सेवापराध' ह० चि०

१२—दूसरे देवताओंके पूजा करनेवाले व्यक्तियोंका दिया हुआ नैवेद्य ग्रहण करना उचित है या नहीं ? ऐसा करने पर क्या हानि है ? किस समय दूसरे देव-देवियों का प्रसाद ग्रहण किया जा सकता है ?

"प्रायः यह देखा जाता है कि दूसरे देव-देवियोंकी पूजा करनेवाले मायावादी होते हैं। उनका दिया हुआ देव-प्रसाद ग्रहण करने पर भक्तिकी हानि होती है और भक्तिदेवीके चरणोंमें अपराध हो पड़ता है। यदि कोई शुद्ध वैष्णव कृष्णार्पित प्रसादान्न दूसरे देव-देवियों को निवेदन करें, तो उसे वे देव-देवी बड़े आनन्दके साथ ग्रहण कर नृत्य करने लगते हैं। पुनः उन लोगों के प्रसादको पाकर शुद्ध वैष्णवमात्र ही परम आनन्द प्राप्त करते हैं।" —जै० ध० १० म अ०

१३—आत्ममङ्गलकामीका क्या संकल्प होता है ?

"आत्ममङ्गलकामी व्यक्तिमें यह संकल्प होता है कि मैं सभी कार्योंमें सरलता का ही परिचय दूँगा—हृदयमें एक और व्यवहारमें दूसरा नहीं बनूँगा। भक्ति-प्रतिकूल लक्षण-युक्त व्यक्तियोंके निकट कृत्रिम भाव-भङ्गी आदि दिखलाकर प्रतिष्ठा पानेकी चेष्टा नहीं करूँगा। शुद्धभक्ति का ही सर्वदा पक्षपात ग्रहण करूँगा और दूसरे किसी भी प्रकारके सिद्धान्तों का समर्थन न करूँगा। मेरा व्यवहार और हृदय एक प्रकार का ही हो।"

—'भक्तिके प्रति अपराध' स० तो० ८।१०

१४—क्या कृष्णभजनकारी व्यक्ति दुर्नैतिक या जड़ासक्त हैं ? किस समय कृष्णभजन होता है ?

"कृष्णभजन करनेके लिए सर्वप्रथम शुद्ध, निर्मल चरित्रकी आवश्यकता है। स्त्री लोगों को पुरुष-सङ्ग और पुरुष लोगोंको स्त्री-सङ्ग नहीं करना चाहिए। जड़चिन्ता और जड़धर्म को दूर कर क्रमशः चिद्धर्मकी उन्नति करने पर ब्रजमें अप्राकृत गोपी-देह की प्राप्ति होगी। गोपी-भाव के उदय न होने पर कृष्ण-भजन न होगा।" —'समालोचना' स० तो० १०।६

१५—किस प्रकारसे हरिवासरका सम्मान होता है ?

"पहले दिन ब्रह्मचर्य-पालन, हरिवासर तिथिमें निर्जला उपवास और रातमें जागरण के साथ निरन्तर भजन तथा दूसरे दिन ब्रह्मचर्य और उपयुक्त समयमें पारण—यही श्री हरिवासर का यथार्थ सम्मान है।"

—जै० ध० २० वाँ अ०

१६—पुरुषोत्तम-व्रतादि-पालन कैसे होता है ?

"परमार्थिक व्यक्ति तीन प्रकारके हैं—स्वनिष्ठ, परिनिष्ठित और निरपेक्ष । पूर्वोक्त सभी कार्य (श्रीपुरुषोत्तम-मास-व्रतविधि आदि) स्वनिष्ठ परमार्थी के लिए पालनीय हैं। परिनिष्ठित परमार्थिक व्यक्ति अपने-अपने आचार्य द्वारा उपदेश किए हुए कार्त्तिक-मास-व्रत-पालन-नियमानुसार पुरुषोत्तम-व्रत-पालन करनेके अधिकारी हैं। निरपेक्ष वैष्णव लोग ऐकान्तिकताके साथ श्रीभगवत्प्रसाद सेवन, नियमके सहित दिनरात अपने सामर्थ्यानुसार श्रीहरिनाम-श्रवण-कीर्त्तनके द्वारा वर्षके सभी महीनों का यापन करते हैं।"

–'श्रीपुरुषोत्तम-मास-माहात्म्य' स० तो० १०।६

१७—किस प्रकारका आचार स्वीकार करना कर्त्तव्य है ?

"जिस किसी आश्रममें ही क्यों न रहे, उसमें आसक्तिरहित होकर उस आश्रमके चिह्नगत निष्ठाको छोड़कर कृष्णभक्ति द्वारा विभावित होकर शुद्ध भक्तोंका आचरण ग्रहण करना चाहिए।"

—'भेक-धारण' स० तो० २।७

१८—बद्धजीवोंका कृष्ण-कृपा प्राप्त करने का क्रम क्या है ?

"शरीर यात्रा या जीवन-निर्वाहके समस्त व्यवहारोंमें सात्त्विक प्रवृत्ति स्वीकार करते हुए क्रमशः राजस-तामस स्वभाव और धर्म का त्याग करना चाहिए। साथ ही साथ शुद्ध भक्तियोगके द्वारा इन सात्त्विक क्रियासमूहोंको निर्गुण करना पड़ेगा। भक्ति-साधन जितना ही निर्मल होता जाता है, उसी परिमाणमें कृष्ण-कृपा भी क्रमशः हृदयमें उदित होती जाती है।"

—'जीवतत्त्वम्' श्री भा० म० मा०

१९—गृहत्यागी वैष्णवोंका क्या कर्त्तव्य है ?

"गृहत्यागी वैष्णवों का स्त्री-संभाषण (आसक्तिपूर्ण होकर स्त्रियोंसे व्यवहार), अर्थ-संचय, उत्तम-आहार, उत्तम-आच्छादन, ग्राम्य बातें, बह्वारम्भ (अपने सामर्थ्यसे अधिक आडम्बर करना) इन सभी का परित्याग कर जिस स्थानमें रहकर सुखपूर्वक हरिभजन किया जा सके, वहाँ रहकर अपना समय बिताना चाहिए।"

–'वैष्णवोंका सञ्चय' स० तो० ५।११

२०—गृहत्यागीका किस प्रकारसे जीवन-निर्वाह करना चाहिए ? किस प्रकारसे कृष्ण-तत्त्व-ज्ञान प्राप्त होता है ?

"गृहत्यागी व्यक्ति किसी भी वस्तुका अधिक संग्रह न करे। प्रतिदिन भिक्षा द्वारा जीवन-निर्वाह करते हुए भक्तिका साधन करेंगे, किसी बहिर्मुख प्रयासमें नहीं रहेंगे। बहिर्मुख प्रयासमें प्रवेश करना उनके लिए दोष है। जो व्यक्ति जितना ही दैन्य और सरलताके साथ भजन करेंगे, उतना ही श्रीकृष्ण की कृपासे वे कृष्णतत्त्वको जाननेमें समर्थ होंगे।"

—'प्रयास' स० तो० १०।९

१२—क्या गृहत्यागियोंके लिए स्त्रियोंके सम्पर्कमें रहना उचित है ?

"भेकधारी वैष्णव लोग माधुकरी वृत्तिके द्वारा माँगकर प्राप्त व तुओंसे जीवन-निर्वाह करेंगे और वे लोग किसी भी स्त्रीसे आसक्ति पूर्ण होकर संभाषण न करेंगे । स्त्री लोग, राजा या विषयी और कालसर्पको एक समान समझकर इन तीनोंके सम्पर्कसे बचकर हरि-भजन करेंगे ।"

—'वैरागी वैष्णवोंका चरित्र विशेषतः निर्मल होना चाहिए' स० तो० ४।१०

२२—बाल्यकालमें क्या हरिभजन करना संभव है ?

"बाल्यकालमें हरिभजन नहीं हो सकता—ऐसा सोचना सर्वथा अनुचित है । हमारे धर्म-इतिहासमें देखा जाता है कि ध्रुव और प्रह्लादादि ने अत्यन्त बाल्यावस्थामें भगवान की कृपा प्राप्त की थी । यदि कोई मनुष्य किसी कार्यको करनेमें समर्थ हो सकता है, तो मनुष्य मात्र ही चेष्टा करने पर उस कार्यको अवश्य ही कर सकता है—इसमें सन्देह ही क्या है ? विशेषकर जिस कार्यका बालकपनसे अभ्यास किया जाय, वह क्रमशः स्वभाव-स्वरूप हो जाता है ।" —चै० शि० १।१

२३—भजन-प्रणालीमें मुख्य और गौण भेद क्या है ? गौणभेदके द्वारा क्या हानि हो सकती है ?

"देश-विदेशोंमें जिस समय मनुष्योंकी असभ्यावस्था अतिक्रम होकर सभ्यावस्था, वैज्ञानिक अवस्था, नैतिक अवस्था और भक्तावस्था उपस्थित होती हैं, उस समय क्रमशः भाषा-भेद, परिच्छद-भेद, भोज्य-भेद, मनोभाव-भेद आदिके द्वारा ईश्वर-भजन-प्रणाली भी भिन्न-भिन्न हो पड़ती है । निरपेक्ष होकर विचार करने पर इस प्रकारके गौणभेद समूह द्वारा कोई हानि नहीं होगी । मुख्य भजन विषयमें ऐक्य रहनेपर फलकालमें कोई दोष नहीं उपस्थित होता ।"

—चै० शि० १।१

२४—साधनकी उन्नतिका क्या प्रमाण है ? विपथ-पतन आदि से रक्षा प्राप्त करनेका क्या उपाय है ?

"साधन पर्वका एक रहस्य यह है कि अप्राकृत ज्ञान, भक्ति और दूसरे विषयोंमें वैराग्य—ये तीनों समान रूपसे बढ़ते हैं । जिस स्थानपर इसका व्यतिक्रम देखा जाय, वहाँ यही जानना चाहिए कि साधन-पद्धतिके मूलमें कुछ न कुछ दोष वर्तमान है । सर्वत्र ही बिना साधुसङ्ग और गुरु-कृपासे विपथ-पतन आदिसे रक्षा नहीं हो सकती ।"

—चै० शि० १।६ (क्रमशः)

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

सन्दर्भ-सार

(श्रीकृष्ण-सन्दर्भ-३०)

श्रीभगवत्-सन्दर्भमें भगवानको परमतत्त्व के रूपमें प्रतिपादन कर उनके शक्तिद्वय का निरूपण किया गया है। उसमें से पहली शक्ति वैष्णवोंकी परम उपास्या और भगवानकी स्वरूपभूता है। इसे स्वरूप शक्ति कहते हैं। भगवानकी भगवत्ता स्वरूपशक्तिमयी है। दूसरी शक्ति वैष्णवों के लिए जगतकी तरह उपेक्षणीया है। इसे माया-शक्ति कहते हैं। यही शक्ति जगत् रूपमें परिणति प्राप्त करती है। जिस प्रकार शक्तिमानके लिए 'भगवान्' शब्दका प्रयोग किया गया है, उसी प्रकार स्वरूप शक्तिके लिए 'लक्ष्मी' शब्दका प्रयोग किया गया है। इस सन्दर्भमें वे भगवान् श्रीकृष्ण नामसे विख्यात हैं; इसलिए उनकी स्वरूपशक्ति किस नामसे प्रसिद्धा हैं, यह निर्द्धारण करना आवश्यक है।

श्रीमथुरापुरी तथा श्रीद्वारकापुरीमें यह शक्ति 'महिषी' नामसे प्रसिद्धा हैं। प्रकट-लीलामें मथुरामें श्री महिषियोंकी अवस्थितिका उल्लेख न रहने पर भी अप्रकटलीलाका वर्णन करते हुए तापनी श्रुतिमें श्रीरुक्मिणीजी की स्थिति बतलाई गई है। इसी प्रकार दूसरी दूसरी महिषियोंके बारेमें भी जानना चाहिए। श्रीमहिषीगण श्रीकृष्णकी स्वरूप-शक्ति हैं, यह स्कन्द-पुराणके प्रभास-खण्डमें श्रीशिव-गौरी संवादमें गोप्यादिके माहात्म्य में वर्णित है—"पहले जब महातेजस्वी श्रीकृष्ण प्रभासमें गये थे, उस समय उनके साथ छप्पन कोटि यादव लोग तथा सोलह हजार गोपी लोग गये थे। हे प्रिये! उनके साथ एक लाख साठ हजार श्रीकृष्ण पुत्र भी आए हुए थे। हे महादेवि! विद्यारूपिणी सोलह गोपियाँ हैं, उनका नाम तुम्हें कह रहा हूँ, एकाग्र-चित्तसे श्रवण करो— (१) लम्बिनी, (२) चन्द्रिका, (३) कान्ता, (३) क्रूरा, (५) शान्ता, (६) महोदया, (७) भीषणी, (८) नन्दिनी, (९) शोका, (१०) सुविमला, (११) क्षरा, (१२) शुभदा, (१३) शोभना, (१४) पुण्या, (१५) हंसशीता और (१६) मालिनी। परमात्मा श्रीकृष्ण हंस-स्वरूप हैं। हे देवि! उनकी इन षोडश शक्तिकी बात सुनी जाती है। श्रीकृष्ण चन्द्र जैसे हैं, वे कलारूपिणी हैं। उनमें से सम्पूर्ण-मण्डला मालिनी षोडशीकला हैं। प्रतिपद् तिथिसे आरम्भ कर चन्द्रमा सभी कलाओंमें सञ्चरित होते हैं। इन गोपीरूपा जो षोडश-

कलाकी बात कही गई है, उनमें से प्रत्येक ही पृथक् पृथक् रूपसे सहस्र भेदको प्राप्त हुई है। तुम्हें मैंने ज्ञान-संभव रहस्य बतला दिया है। जो पुरुष इस रहस्यको जानते हैं, उन्हें बुद्धिमान् व्यक्ति वैष्णवोंके रूपमें जानते हैं।"

यहाँ 'गोपी' शब्दका अर्थ 'राज्ञी' या 'महिषी' है; नाम-लिङ्गानुशासन में 'गोप' शब्दका अर्थ 'भूप' है। 'गोपी शब्द 'गोप' शब्दका स्त्रीलिङ्ग होनेके कारण भूपकी पत्नी राज्ञी है। लम्बिनी अवतार शक्ति है। हंस-शीता का अर्थ—हंस एव जवार्दन: अर्थात् हंसका अर्थ श्रीकृष्ण है और उनकी शीता या शीतलकारिणी (आनन्ददायिणी) शक्ति हंस-शीता है। श्रीकृष्ण की तुलना चन्द्रसे की जा सकती है और शक्तियोंकी उसकी कलासे। पहले पन्द्रह शक्तियोंकी बात कहकर अन्तमें सोलहवीं शक्ति मालिनीकी बात कही गई है। ये मालिनी सम्पूर्ण मण्डला-स्वरूपा हैं। ये कलाशक्तिकी समष्टिरूपा हैं। स्पष्ट समझानेके लिए चन्द्रकी श्रीकृष्णसे तुलना दी गई है। अर्थात् चन्द्र जिस प्रकार सोलह तिथिका भोग करता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी अपनी सोलह शक्तियोंके साथ विहार करते हैं। ये सोलह शक्तियाँ विद्यारूपा हैं। यह ज्ञान-संभव रहस्य उपदेश और यह शक्ति-तत्त्व-ज्ञान वैष्णवता जाननेका लक्षण है।

श्रीकृष्णकी क्रूरा, भीषणी और शोका—इन सभी नामोंकी कैसे सार्थकता हो सकती है? उसका उत्तर यह है कि जिस प्रकारसे 'मल्लगणों के लिए वज्र', 'भोजपतिके लिए साक्षात् मृत्युस्वरूप' और 'असत् राजाओंके शासनकर्त्ता' आदि वाक्योंसे क्रमशः श्रीकृष्ण की कठिनता, कंस-विनाशकत्व और शोक-हेतुत्व (व्यक्ति विशेष के लिए) या दुःखदाय-कत्व प्रतिपादित होते हैं, उसी प्रकार स्वरूप-शक्तियोंके क्रूरा आदि नामोंसे अर्थकी निष्पत्ति होती है। आनन्दरूपा कोई स्वरूपशक्ति अधिकारी विशेषके निकट क्रूरा इत्यादि रूपसे अनुभूत होती हैं, इसमें आश्चर्यकी बात नहीं है। जिस प्रकार उदाहरणके लिए कहा जा सकता है कि सूर्यका प्रकाश सभी वस्तुओंका प्रकाशक होने पर भी उल्लूके निकट वह अन्धकारका विस्तार करता है। अतएव श्रीकृष्णको चन्द्ररूपसे और शक्तिसमूहको कला रूपसे वर्णन करनेके कारण स्पष्टरूपसे उनका स्वरूप शक्तित्व प्रदर्शित हुआ है। उनके स्वरूपशक्तित्वके कारण लक्ष्मीत्व भी सिद्ध हो रहा है। जिस प्रकार साधारण गृहस्थ व्यक्ति गृह-धर्मका पालन करता है, उसी प्रकार अपने काम द्वारा परिपूर्ण, अचिन्त्य शक्तिशाली भगवान् श्रीकृष्ण महिषियोंके समानता-आधिक्य रहित गृहोंमें निवास करते हुए उन रमाओंके (लक्ष्मियोंके) साथ रमण करते हैं। (भा० १०।५६।३२)

रमाका अर्थ—लक्ष्मीकी अंशभूता । वे स्वरूपशक्तिरूपा होनेके कारण ही श्रीकृष्ण उनके साथ रमण करते हैं। श्रीकृष्ण अपने परमानन्द-शक्तिवृत्ति-विशेषोदयरूप प्रेम-विशेष स्वरूप जो काम, उसके द्वारा संप्लुत—व्याप्त हैं। अर्थात् यह काम प्राकृत काम नहीं है। निजजन विशेषमें जो प्रेम-विशेष है, उसीको जानना चाहिए। जब सोलह हजार द्वारका-महिषियाँ ही श्रीकृष्णचन्द्रकी स्वरूपशक्तियोंके रूपमें निर्द्धारित हुई, तब आठ पट्टमहिषियोंका स्वरूपशक्तितत्व कैमुतिक न्याय द्वारा सिद्ध हुआ है। ये कृष्णकी स्वरूपशक्तियाँ हैं, इसके लिए कोई विचार करना अनावश्यक है।

श्रीसत्यभामाजीका भूशक्तित्व पाद्मोत्तर-खण्डादिमें वर्णित है । श्रीयमुनाजीका कृपा शक्तित्व स्कन्दपुराणके यमुना-माहात्म्य आदि में वर्णित है । श्रीहरिवंश-पुराण आदिमें सत्यभामाजीका परमसौभाग्य वर्णित है । अतएव उन्हें प्रेम-शक्ति-प्रचुरतायुक्ता और भू-शक्ति जानना चाहिए । श्रीरुक्मिणीजी स्वयं लक्ष्मीजी हैं। भागवतके १०।५४।६० श्लोकमें कहा गया है—"हे राजन् ! द्वारकापुरीमें लक्ष्मीरूपा रुक्मिणीके साथ मिलित श्रीपति श्रीकृष्णका दर्शनकर पुरवासियोंको परमानन्द प्राप्त हुआ था।" अतएव स्वयं लक्ष्मीत्वके कारण ही विदर्भ पुरवासिनी स्त्रियाँ परस्पर कहने लगीं—"रुक्मिणी इन्हीं श्रीकृष्णकी भार्या होने योग्य हैं और कोई दूसरी रमणी नहीं। एकमात्र अनिन्द्यस्वरूपवान श्रीकृष्ण ही रुक्मिणीके पति होने योग्य हैं, दूसरे पुरुष नहीं।" भीष्मक-कन्या रुक्मिणीजी कुटुम्बोंकी अधीश्वरी हैं और सत्यभामा महिषियोंमें अत्यन्त सौभाग्यवती हैं अर्थात् श्रीकृष्णकी सबसे अधिक प्रीति-पात्री हैं । क्योंकि अपने स्वामीकी प्रीति-प्राप्ति ही स्त्रियोंके सौभाग्य का सूचक है । भागवतके १०।६०।९ श्लोकमें कहा गया है—"जो लीला-विग्रहधारी श्रीकृष्ण के अनुरूप-रूपधारिणी लक्ष्मी हैं, उन श्री रुक्मिणीको अलकायुक्त केश, कुण्डलद्वय और पदक-कण्ठहार द्वारा सुशोभिता, उल्लसित-वदना, सुधामय-हास्ययुक्ता और अनन्यगति-सम्पन्ना देखकर श्रीकृष्ण प्रीतिपूर्ण होकर हँसते-हँसते कहने लगे।" स्वयं भगवानके अनुरूप रूप होनेके कारण श्रीरुक्मिणीजीके स्वयं लक्ष्मीत्वके विषयमें कोई सन्देह नहीं है। श्रीरुक्मिणी-हरण प्रसङ्गमें इस प्रकार वर्णित है—

भगवानपि गोविन्द उपयेमे कुरूद्वह ।
वैदर्भीं भीष्मकसुतां श्रियोमात्रां स्वयंवरे ॥

(भा० १०।५२।१६)

अर्थात् 'हे कुरुश्रेष्ठ ! भगवान गोविन्द (श्रीकृष्ण) भी श्री (लक्ष्मी) की मात्रा स्वरूपा भीष्मकराजकन्या रुक्मिणीके साथ स्वयंवरमें विवाह किया था।" वहाँ 'मात्रा' पद उनादि प्रत्ययद्वारा निष्पन्न है। उसका अर्थ है 'अन्त-र्भूता होना'। 'श्री'—लक्ष्मी जिनके अन्तर्भूता